तुम... जो बहती नदी हो

हिन्दी ADDA

अमिता नीरव

तुम... जो बहती नदी हो

1.साइट पर मैं अपनी इंटीरियर डेकोरेटर के साथ था। उसे बताने लाया था कि कहाँ और कैसा फर्निचर बनेगा। बजट क्या होगा, उसके साथ इंजीनियर भी था...। उस अधबने फ्लैट के ड्राईंगरूम में लगने वाली बड़ी-सी खिड़की की चौखट से हाथ टिकाकर मैं दूर देख रहा था। बारिश का मौसम अभी गया-गया ही था। उस टाउनशिप की बाउंड्री से लगी जमीन पर घास बड़ी हो रही थी और टाउनशिप में काम करने वाले मजदूरों-चौकीदारों के बच्चे वहाँ खेल रहे थे। साइट पर काम जोर-शोर से चल रहा था। आना तो जूही भी चाह रही थी, मगर अनिरुद्ध का कल टेस्ट है और उसकी तैयारी करवानी थी तो जूही ने कहा हम किसी और दिन आ जाएँगे। इंजीनियर इंटीरियर डेकोरेटर को सब कुछ समझा रहा था। मैं भी साथ-साथ कुछ सजेशंस दे रहा था। उसी दौरान मेरा फोन वायब्रेट हुआ... एक बार वायब्रेट होने के बाद बंद हो गया था।

कोई मैसेज था शायद। मैं अपने काम में ही लगा हुआ था। जिसे अर्जेंसी होती है वो मैसेज नहीं करता है। वो सीधे फोन करता है, यह सोचकर उसे फुर्सत के वक्त के लिए छोड़ दिया था। मैंने घूमकर पूरी टाउनशिप के काम को देखा। फोन पर पापा को रिपोर्ट दी और जो सेंपल डुपलेक्स तैयार हो गया था उसके फोटो भी पापा को सेंट कर दिए। साइट ऑफिस में पहुँचे तो मैनेजर ने उठकर कुर्सी खाली कर दी। मैं वहाँ जाकर बैठ गया। बाहर की गुमटी से चाय बनकर आ गई थी, उस छोटे से 8 बाय 8 के कमरे में एक छोटी टेबल, एक टेबल से लगी हुई कुर्सी... टेबल की बाईं ओर दरवाजे के सामने लगी एक बेंच और टेबल की दूसरी तरफ लगी दो कुर्सियाँ... कुल इतने ही सामान से कमरा ठसाठस भरा हुआ नजर आ रहा था। टेबल पर सीमेंट की एक बारीक परत बिछी हुई थी... मैंने उँगली की पोर से टेबल की सतह को छूकर देखा... मैनेजर जरा हड़बड़ा गया। खिड़की की ग्रिल पर अटके गंदे से कपड़े को खींचा तो इंजीनियर के कपड़ों पर धूल उड़कर बैठ गई। उसने घूरकर मैनेजर को देखा। मैं मुस्कुराया था... 'इट्स ओके... जहाँ सीमेंट, ईंट-लोहे-पत्थर का ही काम होगा, वहाँ इससे बचाव नहीं हो सकता है', मैनेजर का तनाव जरा ढीला हुआ।

उसने फिर भी एहतियात से टेबल को साफ किया। इंटीरियर डेकोरेटर शुभा ने इस सबके बीच अपनी कुर्सी जरा पीछे सरका ली। एक 12-14 साल का लड़का चाय लेकर

दरवाजे पर सहमा-सा खड़ा हुआ था। मैनेजर ने जरा खीझते हुए उससे कहा 'अबे यहाँ रख न साले... दरवाजे पर क्या टंगा हुआ है?' मैंने जरा घूरकर मैनेजर को देखा, फिर बच्चे पर नजर गई तो वह जरा सहमा-सा नजर आया मैंने कहा - 'बेटा यहाँ रख दो...' हालाँकि खास तौर से निकाले गए कप थे, लेकिन वो भी पुराने से नजर आ रहे थे। गोल्डन किनारे वाले सफेद कप्स बहुत नफासत से ही भरे होंगे, फिर भी हैंडल के पास चाय छलक ही आई है। शुभा ने एक नजर बेदिली से हैंडल की तरफ देखा... सोचा किस तरह से पकड़े की उँगलियों में चाय न लगे। फिर तरकीब से कप पकड़कर चाय सिप करने लगी। मैंने आदतन मोबाइल फोन की स्क्रीन देखी... मैसेज फ्लैश हो रहा था। फुर्सत थी... चाय का प्याला हाथ में था, खोल लिया... 'वो जो हममें तुममें करार था, तुम्हें याद हो के न याद हो... ।' विपाशा का मैसेज था। विपाशा... चाय छलकते-छलकते बची। सब भूल जाने के बाद भी सब याद है, वैसा ही... जैसा तुमने छोड़ा था...। 'आज तारीख कौन-सी है...' बेखयाली में ही मैंने पूछा था। हँ... प्रदीप चौंका... शुभा ने भी आश्चर्य से मेरी ओर देखा। मैनेजर अरुण ने केलैंडर देखकर बताया 15 अक्टूबर... ।

ओह... विपाशा... मेरा मन वहाँ से उचट गया था। लेकिन जिस जगह मैं बैठा था वहाँ से निकलना आसान नहीं था। मैं उसी वक्त विपाशा से बात करना चाहता था, लेकिन कर नहीं पाऊँगा, जानता था। मुझे बेचैनी महसूस होने लगी। मैं भूल गया... विपाशा ने याद रखा...। 20 साल पहले जब मैं एमबीए करने यूएस गया था, तब विपाशा ने मुझसे कहा था '20 साल बाद मिलेंगे... जिस भी हाल में होंगे।' वो तारीख 15 अक्टूबर थी और उसने 21 अक्टूबर को मिलने की बात कही थी...।

कितनी तो पागल थी वो। मुझे एकाएक उदासी ने... मायूसी ने आ घेरा था। सब कुछ हाथ में होते हुए भी कुछ भी नहीं था... पहली बार मुझे ये लगा था। जबकि जूही से शादी मेरी अपनी मर्जी थी। खुद मेरी ही पसंद...। क्यों... कैसे...?

2.जूही से कहा था, बहुत जरूरी मीटिंग है। एकदम से इन्फॉर्मेशन मिली है। जूही ने कपड़े पैक करना चाहे तो मैंने कहा मैं खुद ही कर लूँगा। मैंने चुन-चुनकर कपड़े रखे थे। सारे कैजुएल्स... मैं कपड़े रखता जा रहा था और सोचता जा रहा था, विपाशा के बारे में... उसे रंगों से कितना प्यार था। शुरुआत में जब जूही, राहुल, पूजा, अंजलि और साथियों ने उसे देखा था तो कितना मजाक उड़ाया था। हरे रंग के कुर्ते पर लाल रंग की सलवार और पीला दुपट्टा...। अजीब तरह का लोअर हुआ करता था, उसका। खूब तो ढीला-ढाला होता था। फिर एक बार अंजलि ने बताया था कि इसे पटियाला कहते हैं। कोई कुछ पहने, वो वही पहनती थी। कई बार एक ही रंग के लोअर-अपर और किसी

और रंग का दुपट्टा। लेकिन उसके कपड़ों के रंग हमेशा गहरे-खिलते और चटख हुआ करते थे।

कस्बे से आई औसत-सी दिखने वाली लड़की विपाशा और हम एक क्लास में थे। लेकिन आते ही उसने सबको चौंकाना शुरू कर दिया था। सबसे पहले उसने लड़कों की तरफ वाली पहली सीट हथिया ली थी। राजीव ने उसे आगाह किया था कि इस तरफ लड़के बैठते हैं, लेकिन उसकी अजीब-सी अकड़ से पूछा था - 'तो? लड़कियाँ यहाँ नहीं बैठ सकती है? कहाँ लिखा है ऐसा...!' अजीब लगता था, उसका लड़कों की तरफ वाली बेंच पर बैठना। वो अकेली ही वहाँ बैठती थी, लड़के एक चेयर छोड़कर बैठते थे। लड़कों और लड़कियों दोनों में ही उसे लेकर रहस्यमयी खुसफुसाहट बनी रहती थी।

तब से उसने क्लास के सारे रूल्स बदल दिए थे। कुछ दिन तो बाकी लोगों ने उससे दूरी बनाकर रखी। लेकिन जल्दी ही सब बदल दिया। विपाशा के साथ सुधा भी उसी कस्बे से आई थी, लेकिन सुधा थोड़ा लेट आई थी। तो दोनों लड़कों की तरफ बैठती थी। प्रोफेसर क्लास में आए तो ये देखकर उनको भी कुछ अलग लगा था। लेकिन अपनी गरिमा के खिलाफ समझ कर उन्होंने इस पर कोई टिप्पणी नहीं की। फिर चार-पाँच महीनों में ही लेफ्ट-राइट का झंझट मिट गया। वो शायद पहला मौका था, जब विपाशा पर उसने गौर किया था। फिर भी अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर आए सारे दोस्तों के बीच हिंदी माध्यम वाले और वो भी कस्बे से आई हुई लड़कियाँ बड़ी एलएस-सी थीं।

तभी तो हमने उसकी सभी बातों का मजाक उड़ाया। कपड़ों का सबसे ज्यादा। क्योंकि ज्यादातर तो उसके कपड़े पारंपरिक ही हुआ करते थे। कभी-कभी वो वेस्टर्न भी पहन लेती थी... जैसे उस दिन... वह पहला दिन था, जब मैंने उसे रिकग्नाइज किया था। यूनिवर्सिटी के बस स्टॉप पर अस्त-व्यस्त हाल में खड़ी बस का इंतजार करते हुए।चेहरे पर कट लगा हुआ था, उसकी टी-शर्ट कंधे की तरफ से गंदी नजर आ रही थी और चेहरा एकदम रुआँसा हो रहा था, जब मैं वहाँ से गुजर रहा था। बहुत दूर से देख रहा था कि कोई अकेली लड़की बस स्टॉप पर इंतजार कर रही है, मुझे जरा आश्चर्य भी हुआ था... इस वक्त... शाम के ६ बज रहे हैं, अमूमन इस वक्त यहाँ कोई इंतजार नहीं करता है। पास आकर देखा तो विपाशा ही थी। कमर में उसके एक पोटली-सी बँधी थी, जो उसे अपनी जींस के हुक में अटका रखी थी।

'तुम...?' - मैंने अपनी गाड़ी रोककर उसे देखा और पूछा। उसके चेहरे पर सांत्वना का भाव आया... और उसने रुआँसे ही कहा, 'हाँ।'

'तुम इस वक्त यहाँ क्या कर रही हो?' - जाने कैसे मेरे लहजे में न चाहते हुए भी अधिकार भाव आ गया था... एक किस्म की चिंता। खुद मुझे भी आश्चर्य हुआ था, क्यों?

ऐसा कभी भी मेरे साथ हुआ ही नहीं था। लेकिन ये सवाल दरकिनार हो गया, जब उसने बताया कि 'मुझे शहर जाना है।'

'चलो... मैं छोड़ देता हूँ।' - हालाँकि मेरे मन में सवाल आया था कि अभी क्यों? लेकिन फिर मुझे लगा कि ये बहुत पर्सनल सवाल है। फिर मेरे और उसके बीच कोई ऐसा रिश्ता भी नहीं है कि मैं उससे स तरह का सवाल पूछूँ।

उसने गाड़ी का दरवाजा खोलने की कोशिश की... लेफ्ट हैंड से लेकिन खुल नहीं पाया। मुझे खीझ हुई... 'ठीक तरह से खोलो।' उसने बहुत बेचारगी से मुझे देखा, खुद ही झुककर दरवाजा खोला। उसे गाड़ी में बैठने में कुछ दिक्कत हो रही थी। राइट हैंड को वह बहुत सँभाल कर रखे हुए थी।

'हाथ में क्या हुआ है?' - मैंने कड़ककर पूछा। उसके चेहरे पर फिर वही रुआँसापन।

'पता नहीं, गिर गई थी, हाथ बहुत तेज दर्द कर रहा है।' - उसने बताया। मैं चौंका था।

'कहाँ गिर गई थी?' - मुझे अपनी आवाज में फिर से वही अभिभावकों वाला स्वर सुनाई दिया। अधिकार से... डराता हुआ, धमकाता हुआ।

'पेड़ पर से...' उसने मेरी चिंता को नजरअंदाज करते हुए जवाब दिया।

'पेड़ पर से... पेड़ पर क्या कर रही थी।' - मैंने खीझकर पूछा।

'अमरूद तोड़ रही थी। गिर गई...।' - कहकर वो मुस्कुराई। मैंने गाड़ी एक तरफ खड़ी की... 'दिखाओ...' मैंने उसके हाथ को जरा सीधे उठाने की कोशिश की।

'ईईईई... दर्द हो रहा है।' - वो चीखी और आँखें आँसू से भर गई।

'इतनी लगा ली... तुम कर क्या रही थी और ये क्या बच्चों की तरह पेड़ पर चढ़ना... तुम अब बच्ची हो क्या?'

उसका रोना देखकर तो मेरा पारा और भी चढ़ गया। मुझे अपना आप अजनबी लगने लगा। इससे पहले ऐसा कभी हुआ ही नहीं था। मैंने किसी को इस तरह से रोते भी तो

नहीं देखा था। गाड़ी रोककर धीरे से उसका हाथ देखा। बाहरी तौर पर तो चोट का कोई निशान नहीं था। मैंने तय किया अधीर अंकल के यहाँ ले जाकर दिखाना होगा। कहीं कोई फ्रैक्चर तो नहीं है।

'...और ये क्या है?' - मुझे फिर से गुस्सा आया।

'अमरूद है...'

'अमरूद... तुम पागल हो गई हो क्या? अमरूद का क्या करने वाली हो?' - बचाते-बचाते भी फिर से गुस्सा आ ही गया।

'अरे वो कला आंटी है न... हमारे हॉस्टल की प्यून, उसकी एक बेटी है बड़ी प्यारी... सुनयना, उसने कह मुझ से कहा था - दीदी अमरूद खाने हैं, बहुत सारे। तो क्या करती? जब अमरूद वाला आता है, तब तो मैं यूटीडी में होती हूँ, सोचा यूटीडी वाले पेड़ पर ही चढ़कर देखती हूँ, कहीं ऊपर होंगे... और देखो मिल गए।' - उसने बहुत उत्साह से कमर में बंधे अमरूद की पोटली को हाथ में लेते हुआ का। मैंने अपना सिर धुन लिया...। क्या करूँ ये समझ नहीं आया...। खैर अधीर अंकल ने एक्स-रे करवाया और बताया कि फ्रैक्चर हुआ है। प्लास्टर चढ़ाया गया, जब मैं उसे होस्टल छोड़ने के लिए जा रहा था, तो उसने फरमाइश की - 'चाय पीनी है।'

मैं कॉफी क्लब की तरफ मुड़ने लगा तो उसने कहा 'नहीं यार... तुम्हारे लक्जरी रेस्टोरेंट की आर्टिफिशयल लाइट्स में नाइस होकर बैठने का मेरा कोई मूड नहीं है।' मुझे एक साथ ही चिढ़ भी आई और गुस्सा भी...।

'फिर...?'

'फिर क्या... रास्ते में किसी ठेले पर...।' - उसने कहते हुए मेरी तरफ देखा और आँख मारी... मुझे उसका बिहेवियर बहुत ही वियर्ड लगा... मैं झेंप गया, लेकिन वो खिलखिलाकर हँस पड़ी। पहली बार वो मेरे साथ थी चाय पी रही थी, वो भी हाई-वे पर खड़े एक ठेले पर...।

मैंने गाड़ी रोकी, उससे कहा -'तुम बैठो, मैं चाय लेकर आता हूँ।'

'मैं भी चलूँगी...' - उसने घूरकर मुझे देखा। मैंने भी...।

'तुम्हें चाय पीनी है या नौटंकी करनी है?' - जाने कैसे मैं आपे से बाहर हो गया।

'नौटंकी...' - उसने मुझे देखकर जीभ चिढ़ाई। मैं क्या कर सकता था, मुस्कुरा कर रह गया।

बहुत दिनों तक यह घटना मेरे मन में यूँ ही दर्ज रही और पेड़ के तने से पीठ टिकाकर हाथ में चाय का गिलास लिए खड़ी उसकी छवि रह-रहकर आँखों में उतर आती रही थी।

3.घर से निकला था तो कुछ अजीब-सी उमंग थी। याद नहीं आ रहा है कि ऐसा पहले कब हुआ था? नाश्ते की टेबल पर बैठे हुए मेरे भीतर कोई धुन चल रही थी और पैर उस धुन पर ताल दे रहे थे। जूही हमेशा अपने आप में इतनी व्यस्त रहती है कि वो अपने आसपास के बारीक परिवर्तनों को पकड़ नहीं पाती है। ड्राइवर सामान लेकर गाड़ी में रखने जा रहा था। जब मैंने जूही को हग किया था। उसे शायद अजीब लगा होगा...क्योंकि बिजनेस मिटिंग में जाने का मेरा ये कोई पहला मौका नहीं था। इससे पहले तो मैंने कभी ऐसा नहीं किया। क्यों किया? ये सवाल मेरे भीतर उठा भी था, लेकिन अपनी जहनी खुशी का बहाव इतना था कि दिमाग के सवाल करने के लिए कोई गुंजाइश ही पैदा नहीं हो रही थी।जैसे ही गाड़ी मेनगेट से बाहर हुई, मैंने खिड़की के शीशे नीचे कर लिए बावजूद इसके कि गाड़ी का एसी चल रहा था...। मैं बाहर का नजारा देखने लगा। हाथ में अखबार खुला हुआ था, जिसे मैंने फोल्ड कर एकतरफ रख दिया। फल-सब्जी के ठेले, बच्चों को स्कूल ले जाती माँएँ... कॉलेज जाती लड़कियों का झुंड... चाय-नाश्ते के ठियों पर लगी भीड़... ट्रैफिक... वाहनों के हॉर्न, रेडियो की उड़ती-उड़ती आती आवाजें... आज मुझे सब कुछ अच्छा लग रहा है। जाने कैसे मैं कल से आजाद हो गया।

मैंने ड्राइवर से पूछा 'नाश्ता किया?'

ड्राइवर ने जरा हैरानी जताई। इससे पहले तो मैंने कभी उससे कोई सवाल नहीं पूछा था। जरा सकुचाकर जवाब दिया - 'हाँ'।

'क्या खाया?'

ड्राइवर और भी ज्यादा सिकुड़ गया, बमुश्किल जवाब दिया - 'अचार-पराठा'

'वाह' - ड्राइवर ने मिरर से मेरे चेहरे को पढ़ने की कोशिश की। एकाएक मेरी चेतना जागी थी, मैं कुछ ज्यादा ही अजीब बिहेव करने लगा हूँ क्या? मैं चुप हो गया इस घड़ी मैं कुछ ज्यादा ही खतरनाक हो रहा हूँ... चुप होकर बाहर का आनंद लेने लगा।

एयरपोर्ट पर अपनी फ्लाइट का इंतजार करते हुए, कितने चित्र मेरे जहन में आ-जा रहे थे। क्यों और कैसे विपाशा ने मेरी जिंदगी में घुसपैठ की थी। और आज इतने सालों बाद मैं क्यों उसके एक मैसेज पर खींचकर गोवा जा रहा हूँ, उससे मिलने? जबकि आगे क्या होगा, ये चित्र ही साफ नहीं है। मगर कुछ तो है उसमें जो इतने सालों बाद भी खींचने की कुव्वत रखती है। वो कस्बाई लड़की...

हाँ वो कस्बाई लड़की... अपनी कहन में, गठन में, बुनावट में... जीवट में... सबमें अलग। एक तरफ जूही थी... शांत ठहरी हुई झील-सी। दूसरी तरफ विपाशा... नाम की ही तरह पहाड़ी चंचल, गतिमान, प्रवाहमान नदी सी। उसे कहीं ठहरना ही नहीं था... वो कहीं ठहरी ही नहीं।

एक दिन उसने खुद ही कहा था 'मैं नदी की तरह हूँ, अपना रास्ता बनाती है, आगे बढ़ती है, मुश्किलों में से राह निकालती है, कई बार रास्ता भी बदलती है, बस लौटती नहीं है। मैं भी कभी नहीं लौटूँगी।' महानगर में पढ़ने के लिए आई कस्बाई विपाशा थी। अलग थी, आत्मविश्वास से लबरेज, जीवन के प्रति एकदम साफ दृष्टिकोण था... पारदर्शी... प्रफुल्लित... जीवन से चमकती थी, उसकी काली, बड़ी-बड़ी आँखें... खुद ही में रहती थी, हमेशा। कभी-कभी ही बाहर आती थी। उसकी हर चीज इस शहर के लोगों से अलग थी।

4.अपना बैग लेकर मैं एयरपोर्ट के लाउंज में बैठा था। सामने स्कूल यूनिफार्म पहने बहुत सारे बच्चे बैठे हुए हैं। उनके साथ यूनिफार्म में ही टीचर भी नजर आ रही हैं। बच्चे शायद हाईस्कूल के थे, ट्रिप पर जा रहे होंगे। बच्चों के चेहरे पर ट्रिप पर जाने का उल्लास नजर आ रहा है, किसी के हाथ में आइसक्रीम कप है तो किसी के हाथ में पेस्ट्री...। कोई कोल्डड्रिंक पी रहा है तो कोई इयरप्लग लगाकर म्यूजिक सुन रहा है तो कोई बात कर रहा है। कितना उन्मुक्त माहौल है। हमारे वक्त तो ऐसा हो ही नहीं पाता था। खासतौर पर यदि लड़की-स्कॉलर है तो उसे कहीं बाहर ले जाना ही कितना मुश्किल टास्क हुआ करता था। जब कभी मैंने जूही को बाहर ले जाना चाहा, आंटी सुबोध को पीछे लगा दिया करती थी, कितनी कोफ्त होती थी।

पहली बार हम लड़के-लड़कियों ने ट्रेन में साथ सफर किया था, जब यूथ फेस्टिवल की यूनिवर्सिटी टीम हिमाचल जा रही थी। इत्तफाक से मैं भी सिलेक्ट हुआ था और विपाशा भी। कितना दुराव हुआ करता था। लड़कियाँ कितना झेंपती थीं? लेकिन वो... हे भगवान।

उस दिन धीरे-धीरे सारे रेलवे स्टेशन पर इकट्ठा हो रहे थे। मैं जब पहुँचा था, तब जाधव मैम थीं वहाँ पर और थोड़ी देर बाद नरगिस ही पहुँची थी। मैम बहुत घबराती थीं, उन दिनों मोबाइल फोन्स तो थे ही नहीं कि फोन किया और घबराहट कम हो जाए... मैं उन्हें कूल करने की कोशिश कर रहा था। तभी वो भी आ ही गई थी। दौड़ते भागते... वैसे अभी ट्रेन के आने में वक्त था। मैम दूसरों को देखने के लिए हमें स्टेशन पर छोड़कर मेनगेट पर जा खड़ी हुईं। उसी वक्त हमारे सामने एकमट मैले हो चले पीली छींट के घाघरे और उतनी ही गंदी गुलाबी ओढ़नी ओढ़े एक महिला अपनी बाँह में एक बच्चे को लिए आकर खड़ी हो गई। ८-१० महीने का उसका मरियाल और साँवला बच्चा उसकी बाँह में नंग-धडंग लटका हुआ था। सिवा लंगोट के उसके शरीर पर और कुछ नहीं था। उसका सिर महिला की बाँह से नीचे लुढ़क रहा था। हमारे सामने आकर उसने अपनी दुख भरी कहानी सुनानी शुरू की। पति के साथ इस शहर में काम की तलाश में आई थी, लेकिन पति उसे स्टेशन पर छोड़कर गायब हो गया... बच्चा बीमार है और उसके पास खाने के लिए और बच्चे के इलाज और दूध के लिए पैसे नहीं है। मैंने उसे झिड़कना चाहा, लेकिन विपाशा ने उसका हाथ पकड़ लिया... 'दिखा बच्चे को!' उस महिला ने एकदम से कदम पीछे खींच लिया। 'अरे दिखा...' - उसने फिर से दो कदम आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया।

मैंने उसका हाथ पकड़ा... 'छोड़ न... कुछ देना है तो दे दे और जाने दे उसे...' - मैंने कहा।

उसने मुझे आँखें दिखाते हुए कहा 'तुम पागल हो गए हो? बच्चा सचमुच में प्रॉब्लम में है। इस बेवकूफ को तो बस पैसा कमाना है। चल मेरे साथ यहाँ कोई डॉक्टर ड्यूटी पर होगा तो उसे दिखाएँगे।'

उसने सख्ती से उस औरत का हाथ पकड़ लिया। वो कसमसाने लगी, उसने बेबसी से मेरी तरफ देखा, लेकिन मैं जो कर सकता था, वो तो पहले ही कर चुका था। अब वो कोई बात मानने वाली नहीं थी। मैं भी उसके साथ-साथ चला गया।

स्टेशन के दफ्तर में तो कोई डॉक्टर नहीं मिला तो उसने मेरी तरफ देखकर कहा - 'इसका ध्यान रखना... मैं अभी आई।' इससे पहले कि मैं समझ पाता, वो वहाँ से निकल गई थी। हमारी ट्रेन लेट होने का अनाउंसमेंट चल रहा था।

मैंने थोड़ी राहत की साँस ली थी कि तभी अनाउंसमेंट की आवाज पर मैं चौंक गया था। 'स्टेशन के पैसेंजर्स में से यदि कोई मेडिकल डॉक्टर हो तो कृपया रेलवे के दफ्तर पहुँचे, एक बच्चे की तबीयत खराब हो गई है। ...ध्यान दें... कृपया ध्यान दें...।' - उफ

ये लड़की, जरा सी बात का बतंगड़ बना देती है। मेरे पास अपना सिर पीट लेने के अलावा और कोई विकल्प बचा नहीं था।

थोड़ी देर में टी-शर्ट और जींस पहने एक मिडिल एज्ड व्यक्ति दौड़ता हुआ पहुँचा और बताया कि 'मैं डॉक्टर हूँ...। बताइए कहाँ है बच्चा?'

तब तक तो विपाशा भी आ ही पहुँची थी। वो औरत वहाँ बैठी कसमसा रही थी, मैं समझ रहा था कि अब क्या होगा? लेकिन विपाशा को समझाना मुश्किल काम था। डॉक्टर ने बच्चे को एक्जॉमिन किया और फिर उस महिला से बहुत सारे सवाल पूछे, इधर हमारी गाड़ी आने का वक्त हो गया था। उसी गाड़ी से डॉक्टर भी जा रहा था, इसलिए दोनों तरफ हड़बड़ी थी। डॉक्टर ने बताया कि महिला ने बच्चे को अफीम खिलाकर सुला दिया है और उस आधार पर भीख माँग रही है।

पहले तो डॉक्टर ने महिला को डाँटा... विपाशा को तो जैसे हिस्टिरिया का दौरा ही पड़ गया। जोर-जोर से चिल्लाने लगी... 'शर्म नहीं आती तुम लोगों को? बच्चे को पाल नहीं सकते तो पैदा क्यों करते हो? और उसकी जिंदगी का व्यापार करते हो? तू रुक... अभी पुलिस को बुलाती हूँ। सारी अकल ठिकाने आ जाएगी। कहाँ है तेरा पति... बता?' गुस्से में आकर उसने उसकी कलाई सख्ती से पकड़ ली और खींचने लगी।

वो महिला जोर-जोर से रोने लगी... जरा-सी देर में दफ्तर के बाहर अच्छा खासा मजमा इकट्ठा हो गया। मैंने उसका हाथ पकड़ा और लगभग खींचता हुआ उसे वहाँ से ले गया, जहाँ हमारे बाकी सारे साथी थे। तभी धड़धड़ाते हुए ट्रेन आ पहुँची और हम सब अपने कोच में पहुँचे।

अब भी विपाशा के चेहरे पर उद्वेलन था, वो अब भी गुस्से और दुख में तिलमिला रही थी... बड़बड़ा रही थी। जब सारे लोग सैटल हुए तो नरगिस ने उससे पूछा था 'तू इतनी उखड़ी-सी क्यों लग रही है?'

'कुछ नहीं' - कहकर उसने अपना मुँह खिड़की की तरफ घुमा लिया था और बाहर देखने लगी थी। मुझे नजर आया था मगर... उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

5.पढ़ाई के दौरान का बहुत थोड़ा वक्त ही उसके साथ गुजरा था। वो मनमौजी रही और मैं अकड़... जैसा कि वो कहती थी। इसलिए हम दोनों के बीच दोस्ती ही दो साल बाद हो पाई। कई बार उसके फलसफे भी समझ नहीं आते थे, इसीलिए आमतौर पर सब उससे दूर ही रहते थे। वो किसी भी बात पर भिड़ सकती थी। हमारे साथ की

लड़कियाँ, पूजा करती, व्रत-उपवास रखती और उसी वक्त वो उन सबका मजाक उड़ाया करती थी। उस दिन जबकि यूनिवर्सिटी में बड़ा फेस्टिव-सा माहौल था।

हम सारे जूनियर्स की वेलकम पार्टी के लिए तैयारियाँ कर रहे थे। प्लान करते-करते एकाएक राशिद बोला - 'यार भूख लग रही है, कुछ खाने का मँगवाया जाए।' जब ऑर्डर देने की बारी आई तो ज्यादातर लड़कियों ने कह दिया, वे नहीं खाएँगी उनका व्रत है।

उसने तमककर पूछा था 'आज किस चीज का व्रत है?' पता चला हरतालिका का... 'ओ... मतलब सारी की सारी पार्वती होना चाहती हैं न अपन पार्वती है, न अपने को शिव की तलाश है, अपना व्रत नहीं है भाई लोगों...' - जोर से कहते हुए वह ऐसे व्यंग्यात्मक ढंग से हँसी कि सारी लड़कियाँ तिलमिला गईं। उसने अपनी जबान काटने का अभिनय किया और कान पकड़कर सॉरी-सॉरी किया। जब हम साथ जाने लगे तो मैंने उससे कहा 'तुम इतना सरकास्टिक बिहेब क्यों करती हो? ये उनका बेहद पर्सनल मामला है।'

वो भड़क गई 'ये जहालत है यार... ये सारी लड़कियाँ कोई अनपढ़ नहीं है। यूनिवर्सिटी में पढ़ती हैं। यदि ये इस तरह से बिहेव करेंगी तो सोचो जिन लड़कियों को ये नियामत हासिल नहीं हैं, वे क्या करेंगी? वो तो सब अपने-अपने पति को चाहे वो जो कोई भी हो, कुछ भी हो पैर धो-धोकर पानी पिएँगी... चरणामृत की तरह।' वो मेरे आगे चल रही थी, इसलिए मैं उसके चेहरे के भाव नहीं देख पाया था। लेकिन महसूस कर सकता था कि हिकारत की लकीर चेहरे से होकर गुजरी होगी।

'लेकिन हर जगह तुम फेमिनिज्म को क्यों लेकर आती हो**?**' **-** मैंने चिढ़कर कहा।

'हर जगह नहीं... जहाँ आता है, वहाँ तो आता ही है न...? ये लड़कियाँ यदि खुद ही लॉजिकल होकर नहीं सोचेंगी तो अपने बच्चों को क्या सिखाएँगी... पूरी दुनिया ही तो कंडिशनिंग करने के लिए तैयार बैठी है। यदि पढ़-लिखकर ये भी कंडिशनिंग की ही हिस्सेदारी करेगी तो फिर पढ़े-लिखे क्यों? जैसे इनकी माँएँ, दादियाँ, नानियाँ, ताइयाँ, चाचियाँ और भाभियाँ करती है, वही ये भी करें। बेकार सिस्टम को ब्लॉक कर रहीं हैं और सोसायटी का पैसा बर्बाद कर रही हैं। इनकी पढ़ाई-लिखाई का सोसायटी को क्या लाभ होगा? बताओ जरा।' - कहते-कहते उसका चेहरा उत्तेजना से लाल हो गया। वो चली गई थी, लेकिन सोचने और अनुभव करने के लिए एक सूत्र मेरे भीतर छोड़ गई थी।

6.गुवाहाटी की फ्लाइट के लिए बस आ गई थी। शायद बेटी की विदाई हो रही थी। एक कम उम्र की लड़की दुल्हन के लिबास में थी और माँ से लिपट कर रोए जा रही थी। दूल्हा एकदम उदासीन होकर दूर खड़ा था। शायद पिता भी थे, लेकिन चश्मा उतारकर अपनी भरी हुई आँखों को रूमाल से पोंछ रहे थे और रोती माँ-बेटी के मिलन को देख रहे हैं। ऐसा लग रहा है जैसे पिता और दूल्हा दोनों ही इस तसवीर में खुद को कहीं फिट नहीं पा रहे हैं। मुझे हँसी आ गई... लेकिन फिर दुल्हन को देखते हुए मन उदास हो गया। विदाई ऐसी भी होती है। अलग होना कैसा होता है, जैसे हम हुए थे वैसा भी तो होता है न...? हमें लगता है कि ये एकाएक हुआ है, लेकिन इसकी भूमिका बहुत पहले से बन चुकी होती है। जैसे इस दुल्हन के ही विदा होने की भूमिका इसके शादी के विचार से ही बन चुकी थी। ये तो खैर होने जैसा ही है, किंतु कई बार अनएक्सपेक्टेड भी होती है। उस दिन नाश्ते की टेबल पर बैठा ही था कि माँ ने बताया तेरे लिए फोन है। आदित्य पूछ रहा था 'क्या कर रहा है?'

मैंने बताया, 'अभी तो नाश्ता...'

उसने पूछा, 'कोई और प्रोग्राम तो नहीं है?'

छुट्टी का दिन था, 'अभी तक तो कुछ और सोचा नहीं है।'

तो उसने कहा - 'तैयार हो जा, मैं आ रहा हूँ, विधायक जी एक साइट दिखा रहे हैं, पापा ने कहा तू देख आ।'

मैंने जल्दी-जल्दी नाश्ता किया और तैयार हो ही रहा था कि रमा ने आकर बताया भइया आपके दोस्त आ गए हैं। मैं बाहर निकला तो देखा न्यू ब्रांड मर्सिडिज बैंज खड़ी है। मैं चौंधिया गया था।

'कब खरीदी यार...?'

'पिछले हफ्ते ही...। कैसी है?' - उसने हुलसकर पूछा था।

'बहुत खूबसूरत है...।' - मेरे मन में सपना जागा था। मैंने प्यार से उस काली मर्सिडिज पर हाथ फेरते हुए कहा था।

हम दोनों वहाँ पहुँचे थे एकतरफ बेतरतीब बस्ती थी, जहाँ कुछ हलचल-सी महसूस हो रही थी। कुछ लोग वहाँ जमा थे, कुछ बस्ती के लोग ही थे। और कुछ बाहरी भी। बीच में थोड़ी-सी कच्ची जमीन थी। वहाँ जाकर आदित्य ने गाड़ी खड़ी की अभी हम बस्ती

की तरफ ही हलचल को देख ही रहे थे कि एकाएक दो-तीन गाड़ियाँ धूल उड़ाती हुई सामने से गुजरी और थोड़ी आगे जाकर खड़ी हो गई। आगे वाली गाड़ी से एक लड़का सबसे पहले उतरा, दूसरी तरफ से एक सफेद कुर्ता और नीली जींस पर भगवा रंग का गमछा जैसा डाले एक सज्जन और उतरे। उसके पीछे रुकी डस्टर से ग्रे रंग के सफारी सूट में विधायकजी उतरे। उनके साथ और तीन लोग...। उसके बाद आई गाड़ी से कोई नहीं उतरा। विधायकजी ने आकर आदित्य से हाथ मिलाया। फिर मुझसे। उनके साथ आए लोगों ने भी एक-एक कर आदित्य से परिचय करवाया। मैं साथ था तो मुझसे भी। उन्होंने बस्ती की तरफ इशारा करके बताया कि ये है साइट। जहाँ हम सबकी गाड़ियाँ खड़ी थी वहाँ के लिए बताया कि यहाँ से हाई-वे गुजरेगा। इस जगह पर चाहे जो बना लो, वारे-न्यारे हो जाएँगे।

फिर एकाएक आदित्य की गाड़ी पर नजर पड़ी... साथ आए कुर्ते वाले शख्स ने पूछा - 'तुम्हारी गाड़ी है?'

आदित्य ने सिर हिलाकर हाँ कहा।

'कब खरीदी?' - अबकी विधायक जी ने पूछा

'पिछले हफ्ते ही तो...' - आदित्य ने जवाब दिया। तब तक विधायकजी और उनका साथी गाड़ी की तरफ बढ़ गए थे। उन्होंने भी मेरी ही तरह प्रशंसा की नजर से देखा... -'बहुत खूबसूरत है जी ये गाड़ी तो।'

मैं समझ ही नहीं पाया, किंतु आदित्य और विधायकजी के बीच कोई गुप्त संवाद हुआ... आदित्य ने गाड़ी की चाभी विधायकजी की तरफ फेंकी, उन्होंने लपक ली। मैं अवाक इस पूरे दृश्य को देखता रहा। मैंने आदित्य के चेहरे को पढ़ने की कोशिश की, लेकिन कुछ पढ़ नहीं पाया। लेकिन मेरी इनर इंस्टिक्ट ने तो मुझे ये तो बता ही दिया था कि ये सब एक खतरनाक खेल चल रहा है।

तभी बस्ती की तरफ की भीड़ में से कुछ लोग इस तरफ आते दिखे। करीब आए तो मुझे उनमें वो भी नजर आई। मैं आश्चर्य में था वो यहाँ क्या कर रही है? मुझे देखकर वह उत्साह से मेरी तरफ बढ़ी। मैं भी उन लोगों को छोड़कर उसकी तरफ बढ़ा।

'तुम... यहाँ क्या कर रही हो?' - मैंने फिर से थोड़ा चिढ़कर, थोड़े अधिकार से पूछा।

'अरे, इन बस्ती वालों को बस्ती खाली करने का नोटिस मिला है। सप्ताह भर में, अब बताओ इतनी जल्दी इनका इंतजाम कैसे होगा?' - उसने बहुत मायूसी से कहा।

'तो... तो क्या तुम इंतजाम करोगी?' - मैं गुस्से में फुफकारा था।

'अरे नहीं, मैं कहाँ से करूँगी, लेकिन ये लोग जरा डरे हुए हैं, तो हम लोग यहाँ आए हैं। देखते हैं क्या रास्ता निकल सकता है?' - उसने फिर यहाँ-वहाँ देखते हुए मासूमियत से कहा।

मेरे दिमाग ने तुरंत इस खतरे को भाँप लिया था। मुझे लग गया था कि विपाशा इन कार्पोरेट्स के लफड़े में फँसकर उलझ न जाए। क्योंकि अब ये मामला सरकार और बस्ती वालों के बीच नहीं है, इसमें बिल्डर भी आ गए हैं और राजनीतिज्ञ भी। और जहाँ पैसा और सत्ता दोनों की ही इन्वॉल्वमेंट हो, वहाँ आम आदमी की न कोई हैसियत होती है और नहीं सुनवाई। अब मैं उन लोगों के बीच उसे कैसे समझाता कि ये अब संवेदना नहीं रह गई है, इसमें पैसा भी उलझ गया है और सत्तासीन भी... आखिर तो विधायक जी भी तो यहीं हैं। मेरी आँखों के सामने से अभी गुजरा दृश्य फिर से गुजर गया। गाड़ी की तारीफ और आदित्य का गाड़ी की चाभी उनकी तरफ फेंकना।

एकाएक बहुत सारे चित्र और बहुत सारा डर कौंध गया था। तभी मैंने जाना था कि मैं उसके खो जाने से डरने लगा हूँ और देखें इत्तफाक कि यही वह पल था, जब मैंने उसके खो जाने देने की नींव रख दी थी। मैंने तय कर लिया था कि उसे इस सारी झंझट से किसी भी तरह निकालूँगा... इस सबमें उसे उलझने नहीं दूँगा।

... और उस दिन रेस्टोरेंट की छत पर उस सर्द से दिन और ठिठुराते बादलों के बीच, कॉफी मग में अपनी अँगुलियाँ फँसाए वो मेरे सामने बैठी थी, लाल रंग के कुर्ते और नीली जींस में, तब मैंने उससे कहा था, 'विपाशा उस बस्ती वाली लड़ाई से दूर रहो।'

उसने अनमने ही पूछा था, 'क्यों?'

'क्योंकि उसमें बहुत खतरा है...'

'खतरा... कैसा खतरा... और खतरा कहाँ नहीं होता दरवेश... हम यहाँ इस रेस्टोरेंट की तीसरी मंजिल पर बैठे खुद को सुरक्षित समझ रहे हैं, क्या पता भूकंप ही आ जाए... और हमारे सँभलने से पहले ही सब खत्म हो जाए या क्या पता कोई प्लेन ही गिर जाए यहाँ...? खतरों के डर से हम मर नहीं जाते हैं दरवेश...।'

मैंने व्यंग्य में ताली बजाई थी - 'ब्राओ... सही है, अच्छा भाषण है। लेकिन बुद्धिमान लोग खतरों से बचने की कोशिश करते हैं और मूर्ख उसमें अपना सिर डालते हैं।' - मैंने देखा था वो आहत हुई थी। मैंने चाहा भी था कि ऐसा हो... कभी-कभी हम खुद से भी

अजनबी हो जाते हैं। मैंने उसके प्रति जरा भी मुरव्वत नहीं दिखाई थी। सीधे, स्पष्ट और सख्त लहजे में मैंने उससे कहा था, 'देखो विपाशा... ये तुम्हारी समाज सेवा... सरोकार, कंसर्न जो भी तुम कहना चाहो, कहो, लेकिन इससे होने वाला कुछ नहीं है, कुछ भी नहीं बदलेगा... तुमने देखा नहीं है कि किस तरह से और किस तरह के लोग इसमें इन्वॉल्व है। बेहतर है तुम इसे यहीं खत्म करो।'

उसने बहुत कैजुअली मेरी तरफ देखा, 'यार ये तो होता ही है, बस्ती के लोगों का साथ इस मोड़ पर हम लोग नहीं छोड़ सकते हैं। वो बहुत मुश्किल में हैं, जो भी होगा, अब तो देखा जाएगा। अभी हम लड़ाई के बीच में हैं, ऐसे मैदान नहीं छोड़ सकते।'

उसके ऐसा कहते ही मेरा पारा चढ़ गया मैंने लगभग चीखते हुए ही कहा था 'ये हम कौन हैं? मैं सिर्फ तुम्हारी बात कर रहा हूँ, कह रहा हूँ, तुम इस पूरे मामले से दूर रहो, जाहिल हो क्या... इतनी छोटी-सी बात समझती नहीं हो।' आसपास बैठे लोग हमारी तरफ देखने लगे। उसने मुझे घूरकर देखा और टेबल पर से अपना सामान समेट लिया। इससे पहले कि मैं कुछ समझ पाऊँ वो खटाखट सीढ़ियाँ उतर गई। मैं अवाक्... आहत उसे जाते देखता रहा। बहुत देर तक वहीं, उन्हीं लोगों और कोलाहल के बीच मैं शून्य-सी मनस्थिति में बैठा रहा। फिर घर लौट आया, लेकिन उससे न मिलने का संकल्प लेकर।

7.दूर से आता हुआ कोई नजर तो आ रहा था, करीब आती आकृति को देखा तो विपाशा ही थी...। वाईन कलर का कॉटन का कुर्ता और आईस ब्लू जींस... बाल फ्लिक्स में कटे हुए थे। लंबे बालों का क्या हुआ? सवाल उठा था, लेकिन दबा लिया। जरा भर गई थी तो रंग ज्यादा साफ नजर आने लगा था। हँसती तो पहले भी थी, लेकिन उसे हँसते देखकर लगा कि वो पहले से ज्यादा खुल कर हँसती है। उसे यूँ हँसते देखकर मुझे उस पर प्यार उमड़ा था, लेकिन बीच के सालों का फासला खाई की तरह फैला हुआ था।

'कैसे हो...? इतने सालों में मुझे याद तो नहीं ही किया होगा तुमने... ?' - वही हँसी उसकी, खुली हुई।

'तुम बहुत नहीं बदली...' - मैंने उसके सवालों को जान-बूझ कर ओवरपास किया।

'हाहाहा, बदलना कैसा होता है यार...? बाहर से...?' - उसने सवाल तो गंभीर पूछा था, लेकिन लहजा बहुत सहज था। मैं हड़बड़ा गया था और वो जोर-जोर से हँसने लगी थी।

'कह सकते हो... पहले से ज्यादा खूबसूरत हो गई हो...।' और उसने मुझे देखकर आँख मारी थी। मैं फिर से असहज हो गया था। कोई अपराधबोध सा महसूस होने लगा था। जबकि उसने तो न कोई उलाहना दिया और न ही कोई ऐसी बात ही कही। वो तो बिल्कुल ही सहज है। मैं उलझने लगा था। फिर सँभल गया और बोला, 'हाँ, खैर ये बात तो है।' - मैंने मुग्ध होकर उसे फिर से देखा।

'और...?' - उसने सिर झुकाकर अपनी नजरें उठाई और सीधा मेरी आँखों में झाँका। मस्ती हिलोरे लेने लगी थी। लगा कि वह तो अगला-पिछला सब हिसाब बराबर कर लेने के लिए ही मिली हो।

मैंने फिर से खुद को संयत किया... 'तुम अब भी उसी तरह के रंग पहनती हो?' - थोड़ा चिढ़ाते हुए उससे पूछा।

'हाँ, मुझे पता है...' - उसने मान दिखाते हुए कहा।

'क्या पता है?'

'कि मेरे कपड़ों के रंग पर तुम लोग बहुत हँसते थे।' - उसने नजरें झुकाई और फिर सिर उठाकर कहा - 'बट आई डिडंट केयर...' मैंने कभी तुम लोगों की बात को तवज्जो नहीं दी।

'वैसे तुम्हें पता कैसे है?' - मैंने आश्चर्य से पूछा।

'वो था तो हमारा भेदिया तुम लोगों के बीच... अद्वैत... वो सब बताता था मुझे।' - उसने चिढ़ाने वाले अंदाज में कहा।

'अरे हाँ... वो अद्वैत... तुम और तुम्हारी वो दोस्त थी न सुधा।' - मैंने भी याद किया। - 'यू नो ही लाइक्स यू... ।'

'डोंट टेल मी... वो सुधा को लाइक करता था।' तभी तो वो अक्सर हमसे मिलने होस्टल आया करता था। - उसने प्रतिवाद करते हुए कहा।

'तुम पागल हो... उस सुधा छिपकली को कौन चाहेगा...? वो तुम्हारे चक्कर में आया करता होगा।' - मैंने चिढ़ाया। अब वो जरा उलझने लगी थी।

'हाँ, वो अक्सर हमारे प्रोजेक्ट्स में रुचि लेता है। अभी पिछले महीने ही मिला था, तुम्हारे बिजनेस के बारे में बता रहा था, तुम्हारा नंबर भी उसी ने दिया मुझे।' - उसने सपाट लहजे में बताया। फिर खुद ही से कहा - 'स्ट्रेंज ही नेवर टोल्ड एनीथिंग टू मी।'

मेरे मन में ईर्ष्या की लहर दौड़ी थी। - 'पता है, जब तुम आदित्य के टाउनशिप वाले मामले में इन्वॉल्व हुई थी, उस दिन मुझे लगा कि देयर इज ए स्ट्रगल ऑफ क्लास बिटविन अस...।' - तल्खी से शुरू हुई बात का समापन निराशा में हुआ। एक मौन उस रेस्टोरेंट के चारों कोनों में फैल गया। इतनी भीड़, शोर-शराबा और रोशनी के बीच भी ये लगा जैसे हम दोनों कहीं दूर एकांत जंगल में बैठे हैं और हमारा मौन तोड़ रहा है मन में चल रहा कोलाहल...।

'देयर इज क्लास... वो हमेशा ही रही है।' - वो बुदबुदाई थी और एकाएक उदास हो गई थी। उसे लगा उससे कुछ छूट गया है, बहुत कीमती...। मैंने उसे देखा, फिर मेरे भीतर कुछ बहुत गंभीर-सा लहराया। उसके चेहरे की उदासी, मुझे भीतर तक हिला गई। एकाएक मुझे कुछ सूझा ही नहीं कि मैं बातचीत का सिरा फिर से पकड़ सकूँ और फिर से उसे उसी मस्ती में लौटा सकूँ। फिर भी बात बढ़ाने के लिए ही पूछ लिया - 'वैसे एक बात बताओ... तुम अब भी कम्युनिस्ट हो...?अब जबकि पूरी दुनिया से कम्युनिज्म आउट हो गया है, तुम कैसे मेंटेन किए हुए हो...?'

मैं नहीं जानता था कि मैंने उसे और भी गहरे कुएँ में ढकेल दिया है। उसने बहुत गहरी साँस खींची और फिर धीरे-धीरे उसने छोड़ी जैसे उदासी का जहर साँसों के साथ छोड़ रही हो...। फिर भी जैसे कुछ खून में दौड़ रहा है वैसे बोली - 'नहीं यार... सारे इज्म एक सीमा के बाद बंधन हो जाते हैं। किस लक्ष्य से शुरू होते हैं और कहाँ पहुँच जाते हैं। मेरा इन सबसे यकीन टूट गया है। इनसान की गरिमा और आजादी से जीने के हक का उद्देश्य लेकर शुरू हुए विचार अंततः उसी को चोट पहुँचाने लगते हैं। इन पिछले कुछ सालों में मैं बहुत निराश हुई... बहुत बार टूटी हूँ।'

मुझे यकीन नहीं आया कि जाती वजहों के अलावा कोई इस तरह की वजहों से भी निराश हो सकता है। लेकिन मैं तो उसे उदासी से निकालने की कोशिश कर रहा था। वो तो लगातार उसी में घिरती नजर आ रही है।

'यार एक बात बताओ... तुम ये सब लाती कहाँ से थी? कितने छोटे-से गाँव से तो आई थी।' - आखिरकार मैंने उसे चिढ़ाने का सामान ढूँढ़ ही लिया था।

'आहाहा... बड़े आए... तुम सारे शहरी लोगों से तो हम कई गुना ज्यादा जानते थे। ज्यादा एक्टिव भी थे और ज्यादा वर्सेटाइल भी। भूल गए... क्या?' - वो फिर से अपने रंग में लौट आई थी।

'नहीं... भूल कैसे सकते हैं? तुमने कैसे जूही को सिंगिंग कॉम्पीटिशन में हराया था।' - मैं इतना सहज हो गया था कि भूल ही गया था कि मैंने जूही का जिक्र उसके सामने नहीं करने का निश्चय किया था।

'अरे... वो तो प्योर फ्लूक था, मेरा तो रियाज भी छूटा हुआ ही था, तब। पर कभी-कभी क्या होता है कि हम, हम नहीं होते हैं। हम बस कर्ता होते हैं, कोई और होता है जो हमसे सब करवाता है। सच उस दिन मुझे बहुत दुख हुआ था। असल में मैं उससे कोई कॉम्पीटिशन करती ही नहीं थी।' - वो फिर से गहरे उतरने लगी थी। मैं उसे रोकना चाहता था।

'फिर...? तुम उसके कॉम्पीटिशन में उतर तो गई थी।'

'हाँ... मैं उतर गई थी। लेकिन यू नो आय वाज वेरी मच इन हर लव...' - उसने रहस्य का पर्दाफाश किया था। - 'पता है क्यों? बिकॉज आई कैन सी हर टू डाई ऑन यू...।'

मैं सहम गया था। वो हर बार की तरह इस बार भी मेरे सामने रहस्य की तरह ही आ खड़ी हुई है। मैं हारने लगा था। मैं चुप हो गया। उसकी आँखों में कुछ तरल-सा चमका था। फिर से मैं छूटे सिरे पकड़ने की कोशिश करने लगा गया। शाम गहराने लगी थी और रेस्टोरेंट में आवाजाही बढ़ गई थी। अचानक वो खड़ी हो गई। - 'मुझे यहाँ असुविधा महसूस हो रही है। बहुत शोर हो रहा है। आय एम फीलिंग रेस्टलेस...। चलो बाहर चलते हैं।'

मुझे भी जरा-सा वक्त मिल गया था। हम दोनों साथ-साथ बाहर निकल आए। मैंने एक बार फिर मन भर कर उसे देखा था। उसने आगे बढ़कर मेरा हाथ थाम लिया था। उसकी उँगलियों की पकड़, मुझसे बहुत कुछ कह रही है। बाजार में खासी हलचल है। दिन भर की मस्ती के बाद सैलानी शाम की तफरीह पर बाहर निकलते हैं। छोटी-छोटी दुकानों पर कई तरह के रंग-बिरंगे सामान.... कहीं कपड़े, तो कहीं नकली गहने... जूते-चप्पल, पर्स, टैटू डिजाइनिंग सेंटर तो स्पा और ब्यूटी-पार्लर्स भी। समुद्र किनारे दक्षिण गोवा में बसा ये अनजान-सा गाँव... पता नहीं सैलानी यहाँ किस तलाश में आते हैं? मुश्किल से एक किमी लंबी सड़क के इर्द-गिर्द लगी हुई दुकानें... लगभग सारी ही अस्थायी। क्योंकि मानसून के दिनों में समुद्र का पानी पूरी सड़क को डूबो देता

है। कुछ इसी तरह की अस्थायी दुकानों पर झोंपड़ी नुमा कमरे... जिसमें सैलानी आकर ठहरते हैं।

गाँव से जुड़े तिराहे से शुरू हुई सड़क पर बस स्टैंड हैं। मडगाँव से आनेवाली बसें यहीं रुकती है। फिर लंबी सड़क के दोनों ओर दुकानों और छोटे-छोटे शॉपिंग कैंपस में बनी कई तरह की दूसरी दीगर दुकानों को पार करते जाने पर सड़क खतम होती है और खतम होती सड़क सीढ़ियों से समुद्र किनारे की रेत तक ले जाती है। एक छोटा-सा दरवाजे जैसा बना हुआ है, जिसके दोनों ओर कंधे तक की ऊँचाई वाली दीवार बनी हुई है। दीवार के उस तरफ समुद्र अपनी सहजता में आता और लौट जाता है। हम उन्हीं सीढ़ियों को पार कर बीच की रेत पर पहुँच गए। रेत पर पहुँचते ही उसने अपनी चप्पल उतार ली। उसने अब मेरा हाथ छोड़ दिया था, लेकिन मेरी हथेली में अब भी उसकी हथेली का गुनगुनापन सरसरा रहा था। उसने अपनी जींस की जेब में हाथ डाल लिया था। मैं उससे गुजरे सालों के बारे में बात करना चाह रहा था। उस सारे वक्त के बारे में जो हम दोनों ने अलग-अलग... अनजान रहते हुए गुजारे थे।

'तो... अब तक कमिटमेंट का भूत उतरा या नहीं...?' जब इतनी गहरी चुप्पी से मेरा मन घबराने लगा तो पूछ ही लिया।

वो आगे चल रही थी, मुझसे... रुकी, रुककर ऐसे देखा जैसे वो मेरे चेहरे के उस पार कुछ देख रही हो... या ऐसे जैसे कि वो उस सवाल के स्रोत को मेरे चेहरे में ढूँढ़ रही हो। 'कमिटमेंट्स... ये क्या होते हैं?' - और उसने सवाल के जवाब में सवाल कर डाला। मैं जरा उलझ गया, '...तो अब भी वही सब करती हो?' कड़वाहट बचाते-बचाते भी सतह पर आ गई।

'हाँ... कुछ नया भी साथ-साथ कर रही हूँ।' - उसने अर्थपूर्ण नजरों से मेरी ओर देखा था।

'क्या...?'

'आजकल मैं पत्थर तराशना सीख रही हूँ। शायद किसी दिन किसी मूर्ति को आकार दूँ...' - वो सहज है। - 'हो सकता है तुम्हारी...?' - वो अबकी मुस्कुराई थी। मैं अपनी कड़वाहट से पार आ गया था।

'कैसे...? मेरा बुत बनाने के लिए कितने दिन मुझे बुत बनाए रखोगी?' - मैंने पूछा था।

'तुम्हारा बुत बनाने के लिए मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं पड़ेगी। बुत का बुत नहीं बनाऊँगी...' - वो खिलखिलाई थी। '- बुत तो जिंदा लोगों का बनता है।'

'तो तुम कुछ भी लगातार नहीं कर सकती न...? एक्टिविज्म छोड़ दिया क्या?' - एक कड़वाहट मेरे भीतर उतर आई। इसी एक्टिविज्म की वजह से ही तो वो मुझसे अलग हो गई थी।

8.वही तो था 20 साल पहले का दिन... जब मैं पढ़ाई के लिए अमेरिका जाने की तैयारी कर रहा था। बस सप्ताह भर बाद ही मेरी फ्लाइट थी। तमाम तैयारियाँ चल रही थी, मैं बार-बार कागजों के सिलसिले में परेशान होकर राजधानी के चक्कर लगा रहा था। थोड़ा चिढ़ा हुआ भी था और बहुत परेशान भी...। ऐन तभी उस दिन मुझे आदित्य का फोन आया। 'यार कुछ जरूरी मैटर है, आ सकता है क्या...?'

'कहाँ मिलोगे...?' - मैंने पूछा। तो उसने जल्दी में बताया कि 'कहाँ और कब नहीं, अभी, सिटी नर्सिंग होम में... इट्स वेरी अर्जेंट...।' - कहकर उसने फोन पटक दिया। उसका व्यवहार मेरे लिए बड़ा रहस्यमय लगा था। अपना सारा काम छोड़कर जब मैं सिटी नर्सिंग होम पहुँचा था तो बाहर देखा कि भीड़ लगी हुई है। पत्रकार अपने कैमरे और माइक लेकर दरवाजे पर खड़े हुए थे। मुझे आदित्य ने तभी कह दिया था कि पिछले रास्ते से आना। मैं जब पिछले रास्ते से नर्सिंग होम के भीतर पहुँचा तो आदित्य बदहवास और परेशान सा नजर आया। मैंने उससे पूछा 'क्या हुआ?'

तो वह मुझे कैजुएलिटी वार्ड में एक बेड पर लेकर गया। उफ... विपाशा...। रेस्टोरेंट की उस शाम के बाद मैं विपाशा से मिला ही नहीं था। कुछ जाने की उलझन और कुछ उसका उस दिन का व्यवहार... मन उसकी तरफ से बिल्कुल उदासीन हो गया था।

आदित्य ने मुझे लगभग धमकाते हुए ही कहा था 'यार इन मैडम को समझा ले... कुछ उल्टा-सीधा हो जाएगा तो फिर मुझसे शिकायत मत करना।'

इस तरह की बात कभी सुनी ही नहीं थी। सुनकर जैसे खून उबलने लगा था। 'क्या तमाशा खड़ा किया है तुमने...?'

मैंने चिढ़कर विपाशा से कहा। तो उसने जवाब दिया 'मैंने कोई तमाशा नहीं किया है। ये ही लोग कर रहे हैं। उन बस्ती वालों को रिहेबिलिटेट कर नहीं रहे हैं और उनसे बस्ती खाली करवा रहे हैं। वो लोग कहाँ जाएँगे, अभी...। मुझे प्रेस से बात करनी है और ये लोग करने नहीं दे रहे हैं।'

'तुम किसी से बात नहीं कर रही हो और अभी पिछले रास्ते से तुम मेरे साथ घर चल रही हो, बहुत हुई तुम्हारी समाज सेवा... बहुत दिनों से मैं तुम्हारा पागलपन देख रहा हूँ। अब नहीं चलेगा।' लेकिन जब उसने मेरे सारे अधिकार और लाड़ को दरकिनार करके कह दिया कि 'मुझे बात करनी है... बस। अभी'

तो मेरा जब्त छूट गया। मैं बाहर जाने लगा तो उसने वहीं से चिल्लाकर कहा 'याद रखना 20 साल बाद मिलेंगे। तब पूछूँगी कि क्या मैं वाकई गलत थी। याद रखना, आल द बेस्ट...।'

मैंने सुना था, लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। मैं आदित्य को इतना कहकर आ गया था, 'मैंने उसे बहुत समझाया, समझ नहीं रही है। जिद्दी है, लेकिन दिल की अच्छी है। थोड़ा कांप्रोमाइस कर ले यार...'

उसे भी पता नहीं क्या लगा, या पता नहीं उससे मेरा मायूस चेहरा देखा नहीं गया, उसने मेरे कंधे पर सहानुभूति का हाथ रखा। मैं लगभग रुआँसा और मायूस होकर वहाँ से चला आया...। और फिर इस देश से भी चला गया। मैंने बाद में जानने की कोशिश ही नहीं की कि आखिर वो कहाँ है, क्या कर रही है?

9.कभी लगता है, कि उसे कुछ भी नहीं व्यापता है। अभी इस वक्त जब वो मेरे सामने है वो निर्विकार होकर कह रही है कि - 'लोगों के दुख कम करने में ही मैंने अपने जीवन का मकसद पाया है। पता है... कई बार मैंने महसूस किया है कि मेरे भीतर एक नदी बहती है। जो आगे... आगे... आगे बढ़ती रहती है। अभी ये कर रही हूँ, पता नहीं कब तक ये ही करती रहूँगी। हो सकता है, किसी दिन कुछ और करूँ। लेकिन नदियाँ अमूमन अपने किनारों के बीच ही बहती है... न। तो एक्टिविज्म कैसे छोड़ सकती हूँ? आसपास दुख हो तो आप सुख से सो कैसे सकते हैं? ये गुनाह है... इसके अतिरिक्त और कोई गुनाह नहीं होता इस सृष्टि में... बाकी सब गलतियाँ होती है। इसीलिए सारी विचारधाराओं को बलाए ताक पर रखकर मैं अपने लेवल पर काम करती हूँ। पता है एक वक्त ऐसा भी था, जब मैंने ये सब छोड़ दिया था।ये वो वक्त था, जब मैं तुमको खो चुकी थी और विचारधारा के स्तर पर भी टूट गई थी। बहुत गहरी टूटन थी। और मुझे सब कुछ मीनिंगलेस महसूस होने लगा था। एकाध बार तो...' - कहते-कहते वो रुक गई। एक घूँट लिया, एक गहरी साँस ली। शायद आँखों में उभर आई तरलता को भी भीतर ढकेला हो...। फिर बोली - 'एक लंबा वक्त कुछ नहीं किया। कुछ नहीं... कुछ नहीं, मतलब कुछ भी नहीं। तब तो ये लगने लगा कि जो मैं हूँ वो ही अर्थहीन हो रही

हूँ... डूब रही हूँ... कुछ नहीं करते हुए खत्म हो रही हूँ।' - वो फिर चुप हो गई। अब मैं ही डूबने लगा। मैं उसे फिर से लौटा लाना चाह रहा था...।

'तुम उस छोटी-सी जगह से इतना कितना लाई थी यार कि अब तक तुम पर सब कुछ उसी तरह से लदा हुआ है?'- मैंने चिढ़कर पूछा था। उसने भी मेरी चिढ़ को समझा था। मुस्कुराई... - 'यार हम छोटी जगह रहने वालों के पास औसत बने रहने की गुंजाइश नहीं रहती है... हम या तो औसत से नीचे रह जाते हैं या फिर औसत से ऊपर चले जाते हैं। ज्यादातर तो औसत से नीचे ही रह जाते हैं। क्योंकि आकर्षण तो हर जगह ही होते हैं। बड़ी जगहों में औसतों का गुजारा हो जाता है, छोटी जगहों में नहीं हो पाता है। फिर हमें आदत भी नहीं होती... या तो हमें दुत्कार चाहिए या फिर प्यार... दोनों में से कुछ भी न मिले, ये हमें गवारा नहीं है।' - वो जोर से खिलखिलाई थी।

मैं रुक गया था और उसे अपने पास खींच लिया था। वो फिर से एकदम सामने आ खड़ी हुई थी। जब्त फिसल रहा था... मेरा भी... वो एकाएक पलट गई।

'पता है मैंने तुमसे यूँ ही नहीं कहा था कि २० साल बाद मिलेंगे। २० साल एक लंबा अर्सा होता है। इस पूरे वक्त में हम बुनियादी तौर पर ज्यादा परिपक्व हुए हैं, दुनिया को देखने का हमारा अपना नजरिया बना है, आदर्शों और मूल्यों के जाल से बाहर निकल आए हैं। आकर्षण और प्यार के बीच के फर्क को समझने के लिए हमें खुद को इतना वक्त देने की जरूरत थी ही... तभी तो हम प्यार को उसके 'अपनेपन... उसके पूरेपन' के साथ समझ पाए हैं। मुझे यकीन नहीं था कि तुम आओगे।' - उसकी आवाज डूबने लगी थी। मैंने उसे फिर से करीब खींच लिया। उसके चेहरे पर उड़कर आई लट को उँगली से हटाते हुए पूछा था मैंने - 'क्यों?'

वो यूँ ही खड़ी रही अचल... पलकें गिरा ली थी, एक आँसू उतर आया था, खुले में...। उसका चेहरा थोड़ा-सा उठ गया था।

'कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक...'

मन थोड़ा भारी होने लगा था मेरा।

10.पूरा चाँद आसमान पर तन कर खड़ा था। समुद्र का शोर लगातार बढ़ता जा रहा था। मटमैला पानी लहरों की शक्ल में बार-बार अपनी सीमाएँ तोड़ रहा था, बना रहा था। मन यूँ ही ऊब-डूब कर रहा था। हाथ पकड़े हुए ही मैंने उससे पूछा था, तुमने २० साल तक क्यों इंतजार किया?

...क्योंकि तुम नहीं कर सके...। - वो रुकी और उसने तपाक से कहा।

तो क्या मुझे अपराधी बनाने के लिए...?

नहीं, ये जानने के लिए कि जो तुमने किया था, वो प्यार था या जो मैंने किया वो...? - दर्द की एक लहर तो उसके कहन में उभरी थी, वो मेरे भीतर उतरकर ठहर गई थी। मैं रुक गया था, वो भी ठहर गई थी। मैं रोना चाहता था, कहना चाहता था - मैं तुम्हारा अपराधी हूँ, मुझे माफ कर दो।

कह नहीं पा रहा था। मैं उसके सामने खड़ा था। अचानक बादल गड़गड़ाने लगे, बिजली चमकने लगी। तभी... मैंने उसे और करीब खींच लिया था। उसने मेरे हाथों की पकड़ के बीच ही कहा था -वदरवेश लाइफ इज नाट आल अबाउट फाउंड एंड लॉस्ट... इट इज अबाउट लविंग... लीविंग और लेट बी लिव...। प्यार करना... प्यार को जीना है और मुक्त कर देना है।

फिर उसने मुझे पीछे की ओर हल्का सा धक्का दिया, जोर से खिलखिलाई और तेजी से भागने लगी। मैं उसके पीछे भागा... तो समंदर के कोलाहल में से उसकी हँसती सी आवाज आई... जाओ छोड़ दिया। मैं उसके पीछे-पीछे भागने लगा। मेरे जूतों में रेत भरने लगी... पैर भारी हो रहे थे। वो जिस दिशा में भाग रही थी, वहाँ अँधेरा था। आसमान पर पूनम का चाँद था जरूर, लेकिन अचानक दक्षिण के इस हिस्से को बेमौसम बादलों ने आ घेरा था। पूरे आसमान पर वो बादल छा गए थे और चमकते चाँद को भी ढक लिया था। अँधेरा सघन होने लगा था। पूरी ताकत और शिद्दत से दौड़ते हुए भी मैं उस तक नहीं पहुँच पा रहा था... वो लगातार अँधेरे में समाते नजर आ रही थी। मैं रुक गया... वो गुम हो गई। उसने कहा था कि मैं नदी की तरह हूँ, लौटूँगी नहीं...।

मैं थक गया, वो आगे बढ़ गई...